# आमुख Introduction

संस्कृत नाट्य साहित्य में "प्रतीक नाटक" की चर्चा दृष्टिगोचर नहीं होती परन्तु जिन दशरूपकों की चर्चा नाट्य शास्त्रियों एवं काव्य शास्त्रियों ने की है उनमें "ईहामृग" का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जिसे हम पशु - प्रतीक भी कह सकते हैं। इस विशेष प्रकार के रूपक में स्त्री-पुरूष के चरित्र को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से उद्घाटित किया जाता है। "नायको - मृगवदलभ्यां नायिकामत्र ईहते वाञ्छति इति ईहामृगः"।[1] कहकर दर्पण के टीकाकार उसे संकुचित भले ही कर दिया हो परन्तु ईहामृग अपने आप में एक व्यापक अर्थ लिए हुए है। डॉ० रामसागर त्रिपाठी ने ईहामृग का अर्थ भेड़िया बताया है।[2] जो अपने छल-कपट व चालाकी के लिए प्रसिद्ध है। धनिक ने इस शब्द का अर्थ जंगली जीव से किया है।[3] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि ईहामृग न केवल अतिरिक्त वासनाओं से ग्रसित भटकता हुआ अतृप्त हिरन है, और न ही भूखा भेड़िया। वह आदमी के भीतर भरे हुए जंगल और भेड़िए पन का प्रतीक है। यह वही जंगल है जिसका अनुभव आज हम कर रहे हैं।

यद्यपि संस्कृत नाट्य रूपकों की तरह आज कोई नाटक नहीं है और न ही आज के नाटकों की तरह संस्कृत नाट्य साहित्य में सत्य है और न ही "प्रतीक नाटक" का वर्गीकरण ही हुआ है। परन्तु यह उपनिषद सत्य है कि वेदों, उपनिषदों, आरण्यकों और ब्राह्मण ग्रंथों के संवाद प्रतीकात्मक हैं। मानव जीवन के विविध गूढ़ रहस्यों को पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं के द्वारा स्थापित किया गया है।

परन्तु यह बात सत्य है कि समकालीन हिन्दी नाट्य रचना के भीतर पशुता, जंगलीपन, बर्बरता, छलावा, धोखाधड़ी, जीने की स्वछंद प्रवृत्ति, वासनाजन्य भूख, अतृप्ति, सभी प्रकार के बंधनों से अपने आप को अलग रखने की प्रवृत्ति, वर्जनाओं, सीमाओं और नियन्त्रण के प्रति अपेक्षा का भाव जो इनमें देखने को मिलता है वह निश्चय ही चिंतनीय है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध "प्रतीक नाटक": सामाजिक और राजनैतिक अभिव्यक्ति" उपलब्धि, वस्तुसंम्प्रेषण, रंगसृजन, नयी शिल्पविधि, टैकनिक आदि की

---

1- साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
2- भारतीय नाट्य शास्त्र: डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृ० 170
3- वही - पृ० 170

दृष्टि से बिल्कुल नया है । और इसके साथ-साथ समकालीन युग में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और मानवीय विसंगतियों की तीव्र अभिव्यंजन कौशल को ध्यान में रखकर लिखे जा रहे इन नाटकों पर विचार भी बहुत कम हुआ है । नाटक एक सामाजिक कला होने के नाते उसकी सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों और पड़ रहे प्रभावों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । समसामयिक युग में मन को झकझोर कर रख देने वाली ढेर सारी ऐसी रचनाएँ प्रकाशित होकर सामने आई, जिस पर हमें विचार करना आवश्यक प्रतीत होने लगा और इस लिए हमने एक नये सत्य को अपने शोध का विषय बनाया ।

यह विषय उतना ही मौलिक है जितना कि एक कुशल अध्येता के लिए होना चाहिए । अपने बाल्यकाल से ही हमें नाटक देखने और बार-बार घटनाओं, दृश्यों को समझने तथा उसका मूल्यांकन करने का शौक था जो हमें इस तरफ खींच लाया ।

हमने शोध के लिए "प्रतीक नाटक":सामाजिक और राजनैतिक अभिव्यक्ति" इस लिए रखा कि आज जो नाटक लिखा जा रहा है या जिसे "प्रतीक नाटक" के नाम से जाना जा रहा है उसके पीछे किन-किन स्थितियों का हाथ है ? समाज, देश काल तथा राजनीति से यह नाटक कहाँ तक प्रभावित हुए हैं या इन नाटकों की अभिव्यक्ति समकालीन मानव को किस स्तर तक प्रभावित कर रही है ।

नाटक साहित्य की विधा में चाक्षुष होने के नाते देश या समाज की तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक स्थितियों का जायजा करता है और उसी रूप में वह दर्शक के समक्ष प्रस्तुत भी करता है । इस लिए किसी भी नाटक पर विचार करने से पहले उसकी सामाजिक व राजनैतिक स्थितियों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है । जब हम समकालीन नाटक या प्रतीक नाटक की बात करते हैं तो हमारे सामने वह सारा परिवेश आ जाता है , वह सारी स्थितियाँ सामने दिखाई देती हैं जिनमें हम जी रहे हैं । और जिनकी अभिव्यक्ति इन नाटकों में हुई है ।

समकालीन प्रतीक नाटकों में लहरों के राजहंस , कलंकी, सूर्यमुख, मिस्टर अभिमन्यु, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, तीन अपाहिज, आधे-अधूरे, 'द्रौपदी आदि नाटक जहाँ जिंदगी की अनेक निर्मम और क्रूर स्थितियों का निदर्शन करते हैं वहीं पर समाज के बिखराव, विद्रोह, आक्रोश , सामाजिक एवं राजनैतिक विसंगतियों , भद्दे संवादों की

सृष्टि करते हैं। यही कारण है कि जीवन की सब तरफ से देखने वाला सर्जक नाटक को शैली में उतार कर एक सच्ची अभिव्यक्ति देता है जिससे समकालीन सामाजिक व राजनैतिक अभिव्यक्तियों का संदर्भ स्वतः ही खुलकर सामने आ जाता है।

एक ओर जहाँ ये नाटक समाज और राजनीति से जुड़कर राष्ट्र को उसकी अस्मिता का परिचय कराते हैं वहीं पर दूसरी ओर परम्परागत नाट्य परम्परा से भिन्न समसामयिक संदर्भों को संवेदना के स्तर पर असाधारण रंग कौशल से संप्रेषित कर एक नई ह टेक्नीक ईजाद करते हैं। जिसे हिन्दी साहित्य की दिशा में एक नई उपलब्धि कह सकते हैं। वस्तु योजना और रंगीय संप्रेषण की दिशा में ज्ञानदेव अग्निहोत्री का "शुतुर्मुर्ग" और मोहन राकेश का "आधे-अधूरे" निश्चय ही समकालीन हिन्दी साहित्य के लिए एक उपलब्धि है। जहाँ पर यह नाटक एब्सर्ड नाटकों की तीव्र अभिव्यंजना का द्वार खोलते हैं वहीं पर दूसरी ओर दृश्यों के रोचक टुकड़ों को जोड़कर एक ही अंक की पूर्णाकार रंग-प्रस्तुति की संभावनाओं का एहसास कराते हैं।

योर्सपेथफुली, रसगंधर्व, त्रिशंकु, अब्दुल्ला दीवाना, आकाश झुक-गया, सिंहासन खाली है, बकरी, अमृत पुत्र, शंबूक की हत्या, भस्मासुर अभी जिंदा है, आदि बहुआयामी रंगोपलब्धियाँ उन्हीं संभावनाओं की देन है। आज के ये नाटक वस्तु योजना को दो रूपों में प्रस्तुत कर रहे हैं। एक तो विशुद्ध मनोरंजन के स्तर पर, और रोचक शिल्प के रूप में दर्शकों के व्यापक जीवन को समेटते हुए उसे बारीकी से उनके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

दूसरी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि कुछ ऐसे नाटक देखने को मिल रहे हैं जिनके अध्ययन से हम समाज के गहरे से गहरे स्तर ओं तक पहुँच कर उसकी स्थितियों का जायजा कर सकते हैं। कुछ ऐसे नाटक हैं जो शोषित समाज की अथवा समाज के शोषक वर्ग की नंगी तस्वीर प्रस्तुत करने में सक्षम हुए हैं। जिसमें "योर्सपेथफुली", तेंदुआ, तिलचट्टा, अब्दुल्ला दीवाना, शंबूक की हत्या आदि महत्वपूर्ण नाटक हैं जिन्हें एब्सर्ड नाटक के नाम से भी संबोधित किया जाता है। ये नाटक कहीं-कहीं पर प्राचीन पौराणिक संदर्भों के माध्यम से आधुनिक समसामयिक संदर्भों को उजागर करने में सक्षम हुए हैं जो निश्चय ही उपलब्धि के नाम पर वस्तु विधान और संप्रेषण शिल्प की अनेक

विशिष्ट विधाओं को जन्म देते हैं ।

"सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक", कर्फ्यू, आधे-अधूरे, तेंदुआ, कुत्ते, परिन्दे, तू-तू, रसगंधर्व, रोशनी एक नदी है, अब्दुल्ला दीवाना, एक और द्रोणाचार्य, बुलबुल सराय, भस्मासुर अभी जिन्दा है, वाह रे इंसान, घरौंदा, चारपाई, रात रानी, तीन दिन तीन घर, सूखा सरोवर, सिंहासन खाली है, शुतुरमुर्ग, राम की लड़ाई, नागपाश रुक गया था उर्फ अल्ला दाद खाँ, अन्धों का हाँथी, पीली दोपहर आदि इसी युग की देन है । संस्कृत नाटकों का प्राचीन एवं शास्त्रीय शिल्प तथा लोकनाट्यों की रूढ़ि और लचीलेपन का एक साथ प्रयोग इन नाटकों में मिलता है । कविता में जिस प्रकार आज कल मुक्त रूप अपना लिया गया है ठीक उसी प्रकार नाटकों में भी मुक्त शिल्प की सृष्टि की गई है । समसामयिक नाटकों में यौन संबंधों का उन्मुक्त चित्रण, गंदे, अश्लील एवं भद्दे वाक्यों का प्रयोग तथा युद्ध, चिंता, प्रेम, हत्या आदि वर्जित दृश्यों का प्रयोग खुलकर आज के नाटकों में हो रहा है । इसका मूलभूत कारण है आज का व्यक्ति पारम्परिक वर्जनाओं से ऊब गया है । सभी प्रकार की वर्जनाओं व प्रतिबंधों को त्यागकर वह कपड़े के भीतर झाँकना चाहता है । वर्जितदृश्यों को बेपर्द करना चाहता है । वह संसार की सभी निषिद्ध वस्तुओं को भोगकर तृप्त होना चाहता है । यही कारण है कि आज के नाटकों में कहीं कोई चरित्र नहीं दिखाई देता । भीड़ में शामिल होकर मनुष्य अपनी पहचान खो चुका है । थोड़े से सुख के लिए आज का व्यक्ति अपनी नियति बदल सकता है । यही कारण है कि आज के नाटकों में अंक विभाजन, दृश्यविधान, पात्र परिचय, संधि-संध्यंग, अर्थ प्रकृतियों और कार्यावस्थाओं जैसा कुछ भी नहीं है । यदि कुछ है भी तो वह सब प्रतीकात्मक है । समसामयिक नाट्य रचनाकारों ने प्राचीन कथा संदर्भों, पौराणिक आख्यानों, चारित्रिक प्रवृत्तियों तथा वेद एवं पुराण कालीन पात्रों को नये नये संदर्भों के अनुसार ढालकर नया अर्थ भरने तथा प्राचीन गाथाओं को आधुनिक संदर्भ में संप्रेषित करने का प्रयास किया है । अभिमन्यु, एकलव्य, द्रौपदी, द्रोणाचार्य, कंश, दुर्योधन, शंबूक जैसे ऐतिहासिक चरित्रों को प्रतीक मानकर समसामयिक नाट्य धर्मियों ने सत्ता, कुर्सी और राजनीतिक छल छद्म को अपना केन्द्रबिन्दु बनाया और नई-नई अभिव्यंजनाएँ प्रस्तुत की । जिसके फलस्वरूप प्रतीक नाटकों का

जन्म हुआ । मानव जीवन के गूढ़ रहस्यों , यौन भावनाओं , संवेदनाओं एवं संकीर्णताओं को सही एवं सचोट अभिव्यक्ति देने के लिए परम्परा से हटकर जिस नई रचना शैली या रचनाधर्मिता को बढ़ावा मिला वह प्रतीकात्मक थी इसलिए उसे केवल नाटक न कहकर प्रतीक नाटक कहा जाने लगा । जहाँ पर त्रिशंकु, शंबूक की हत्या, रसगंधर्व, द्रौपदी, कथा एक कंश की, एक और द्रोणाचार्य आदि नाटक पौराणिक प्रतीकों पर आधारित हैं । वहीं पर कर्फ्यू, आधे-अधूरे, तेंदुआ, कुत्ते , तू-तू, शुतुरमुर्ग, मादाकैक्टस, भष्मासुर अभी जिंदा है , घरौंदा, चारपाई जैसे नाटक समसामयिक परिस्थितियों में जन्म ले रहे लिज-लिजेपन, मक्कारी, भ्रष्टाचार, भ्रष्ट - रीति रिवाजों एवं पारिवारिक संकीर्णताओं तथा पशुता के प्रतीक बनकर एक नई नाट्य परम्परा को जन्म दे रहे हैं । आज के नाट्य धर्मियों की अभिव्यक्ति के प्रति नई चाह , न कही जाने वाली बातों , वर्णित दृष्यों और संवादों को प्रस्तुत करने की चाहना ही उसे प्रतीकों की परम्परा में ला ढकेलती है । और रचनाकार इसे अपनाने के लिए विवश हो जाता है। अतः उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रतीक एक विकसित प्रयोगशील नाट्य शिल्प है जिसके अपने अलग प्रतिमान हैं । और उन्हीं प्रतिमानों और परिबलों को केन्द्र में रखकर इन नाटकों की गहराई तथा सूक्ष्मदर्शिता को मापा जा सकता है ।

यदि हम दृश्य विधान और संवाद जैसे महत्वपूर्ण परिबलों और तथ्यों को ध्यान में रखकर इन प्रतीक नाटकों का अध्ययन करें तो "प्रजा ही रहने दो", "सबरंग मोह भंग" आदि जैसे नाटकों में केवल दृश्य संख्याएँ भर दी गई हैं , तीसरा हाथी, बुल बुल सराय, एक और अजनबी जैसे नाटकों में केवल मध्यांतर की योजना कर नाटक को दो भागों में बाँट दिया गया है । तीसरी और दुलारी बाई , योर्सफेथफुली, आज नहीं कल, लोटन, आदि जैसे नाटकों में किसी प्रकार का विभाजन नहीं मिलता । एक घटना की तरह नाटक शुरु होता है और खत्म हो जाता है । अस्त-व्यस्त एवं जीवन के अनिश्चय की छाप शिल्प के अनिश्चित रूप विधान पर देखी जा सकती है ।

मणि मधुकर ने शिल्प चेतना की सजगता का बड़ा बढ़िया उदाहरण प्रस्तुत किया है । उन्होंने नाटक के चरित्रों का नाम न देकर अ, ब, स, द जैसे वर्ण प्रतीक ले लिए हैं । एक बात आज और देखने में आ रही है

कि प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्रों में नेता या नायक के लिए जो परिभाषाएँ बनाई गई थी वह आज उस रूप में नहीं रही । अदना से अदना व्यक्ति भी आज नायक बन सकता है ।

"राजा"बलि की नयी कथा" में भगवान पात्र हैं और ये स्वयं देखते और भोगते हैं । शंबूक की हत्या में शंबूक का शव लेकर उसका पिता कोर्ट कचहरी का दरवाजा खटखटाता है , अग्निलीक राम के संपूर्ण चरित्र की साम्यवादी व्याख्या प्रस्तुत करता है । एक सत्य हरिश्चन्द्र में "लौका - राजा"को अपनी परीक्षा देने के लिए विवश कर देता है । वह मानता है कि हरिश्चन्द्र ही अपनी परीक्षा बार-बार क्यों दे । "अरे मायावी सरोवर" का राजा घटनावश स्त्री बन जाता है और वह अब उन्हीं अनुभवों से होकर गुजरता है । यह पुरुषों में स्त्री की समझ का पैदा होना है ।

परन्तु यह तय है कि आज के नाटक अंकहीन, दृश्य योजना विहीन, अर्थ-प्रकृतियों एवं संधियों से दूर भले हों पर हम यों नहीं कह सकते कि इन नाटकों में नाटकीयता या नाटकपन नहीं है । रचना के भीतर भंड़ैती या पशुता का जंगलीपन जो देखने को मिलता है निश्चय ही वह हमारे समाज की विसंगतियों से प्रस्तुत है । उसे हम किसी तौर पर रचना से अलग नहीं कर सकते हैं । बदलती हुई परिस्थितियों और संवेदनाओं ने आज उसे जंगली बना दिया है । जंगल में खोया हुआ बिल्कुल अकेला, मरुस्थल में भटकते हुए उसी मृग की तरह जिसकी ईहा अर्थात पिपासा अभी शांत नहीं हुई है । आज के इस ईहामृग (पशु प्रतीक) के सामने दया, धर्म , ज्ञान कुछ भी नहीं है बस उसके सामने सिर्फ भूख है और उसी भूख को दबाये हुए वह जंगल में भटक रहा है । इन अतृप्ति वासनाओं की शिकार चाहे कर्फ्यू की नायिका हो या आधे-अधूरे की सावित्री या सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक की नायिका रानी शीलवती । स्त्री-पुरुष की इस अपूर्णता व अतृप्त प्यास को रचनाकारों ने सफल अभिव्यक्ति देने के लिए पशु प्रतीकों को अपनाया । आज के स्त्री-पुरुष के बीच पनप रही पशुता , अतृप्ति एवं अपूर्णता की भावना को अभिव्यक्ति देने के लिए रचनाकारों के समक्ष इन पशु प्रतीकों के अलावा और कोई चारा न था ।

आज के स्त्री-पुरुष के बीच पनप रही पशुता उसके व्यवहारों , विचारों, मानसिक विकारों या यौन संबंधों के बीच कहीं भी हो सकती है । और उसके भीतर उभरता हुआ पशुपन साँप, बिच्छू, शेर , चीता, भेडिया, तेंदुआ , शियार, कुत्ता, हाथी , हिरन कुछ भी हो सकता है । स्त्री-पुरुष के बीच उभरते

हुए पशुपन ने पारिवारिक , राजनैतिक , एवं सामाजिक चेतना को भी धरासायी कर दिया है । यही मूलभूत कारण है कि जिससे आज के रचनाधर्मी स्त्री-पुरूष के भीतर उभरते हुए पशुपन को शुतुरमुर्ग, तीसरा हाँथी, तिलचट्टा, तेंदुआ, सभ्य साँप , बुल बुल सराय , चतुर्भुज , राक्षस ,, स नरसिंह कथा, तू-तू, नागपाश, भष्मासुर अभी जिंदा है, घास और घोड़ा , बकरी आदि अनेकों नाटकों में प्रयुक्त पशु प्रतीकों और उनमें निहित व्यंजनाओं को उभारने का प्रयास किया है । आदमी के के पशुपन को व्याख्यायित करते हुए पशु प्रतीक और साथ ही उसके शीर्षक भी दे दिए हैं । चरित्रों के रूप में पशुओं की भी भूमिकाएं दे दी गई हैं और व्यंग्य द्वारा मनुष्य के वर्तमान जीवन पर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया गया है । निश्चय ही मानव मूल्यों का यह विघटन पशु प्रतीकों के माध्यम से एक वास्तविक शिल्प चेतना है । इन्हीं नाट्य रचनाओं में जहाँ पर मुद्रा राक्षस का तेंदुआ संपन्न वर्ग की यौन कुंठा, हिंसक भावना, विकृत मनोवृत्तियों एवं अतृप्ति भावनाओं का प्रतीक है वहीं पर रमेश बक्षी का तीसरा हाँथी पुरानी मान्यताओं का प्रतीक है जिसे सब मिलकर गिराने का प्रयत्न करते हैं । इसी प्रकार डॉ० सुरेश चंद्र का कुत्ते नाटक इन्हीं श्रेणियों में आता है । निश्चय ही इन नाटककारों ने यथार्थवादी समस्याओं को संचित करने के लिए संकेतात्मक प्रतीकों का सहारा लिया है । इन सामाजिक प्रतीक नाटकों में जीवन की कठिन वास्तविकताओं के बीच उनकी गम्भीरता और सूक्ष्मता , सही सूझ बूझ के साथ संकेतो और प्रतीकों के सफल प्रयोग का दावा ही नहीं करती अपितु आधुनिक जीवन संघर्षों को भोगते हुए इन नाटकों के पात्र यदि एक ओर व्यक्ति की हैसियत से सही हैं तो दूसरी ओर सामाजिक दृष्टि से उनका महत्व और अधिक बढ़ जाता है । अन्धा कुँआ में सूका की समस्या व्यक्तिगत न होकर हर भारतीय ग्रामीण नारी की समस्या है । इसी तरह चाय पार्टियों में रमेश की मनोवृत्ति युग की मनोवृत्ति है । "चिन्दियों की एक झालर में" चित्रित नन्दन और मंगल का संघर्ष दो पार्टियों का संघर्ष है । आँधी और घर में पात्रों के पारिस्परिक संघर्ष में पुरानी और नई पीढ़ी के अन्तर को दिखाया गया है । नाट्य रचनाकारों ने अपने नाटकीय चरित्रों को प्रतीक बनाने के लिए विशिष्ट नाम न देकर उन्हें जातिगत संबोधनों से अभिहित किया है । जैसे — आधे - अधूरे, शुतुरमुर्ग, तू-तू, × । आधे-अधूरे में रचनाकार ग ने पात्रों के नाम न देकर काले सूट वाला, पुरूष एक , पुरूष दो, पुरूष तीन , पुरूष चार, स्त्री, बड़ी लड़की, छोटी लड़की तथा लड़का कहा है । इसी तरह शुतुरमुर्ग, नाटक में

रचनाकार ने अपनो पात्रों का नाम राजनीतिक दृष्टि से रखा है। राजा-रानी, रक्षा मंत्री, भाषण मंत्री, महामंत्री, विरोधी लाल, मामूलीराम तथा मरता हुआ आदमी आदि प्रतिनिधियों के नाम देकर प्रतीक नाटक को एक नई अभिव्यंजना प्रदान की है। तू-तू नाटक में आत्मानंद - सदासिंह ने चाचा को नेता वर्ग का प्रतीक बनाकर उसके चमचों को बुल डॉग, एल्सेसियन आदि कुत्तों की विभिन्न जातियों से अभिहित किया है। इस प्रकार नवीन प्रवृत्ति के इन प्रतीक नाटको में पात्रों का कोई व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है। नाट्य रचनाकारों में पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनैतिक या अन्य किसी परिवेशगत भूमिका में अपने पात्रों के चरित्र की परिकल्पना की है।

"अंधा कुँआ, मादाकैक्टस, कर्फ्यू, आधे-अधूरे, शुतुरमुर्ग, घरौंदा, चारपाई, तेंदुआ, कुत्ते, परिन्दे, तीसरा हाथी, आँधी और घर तथा बकरी आदि नाटकों में प्रतीक का प्रयोग मुख्य तथा शीर्षक के रूप में हुआ है। शीर्षक के रूप में प्रतीक का चुनाव रचना के लक्ष्य को ध्वनित करने की सामान्य शब्दावली है। मुख्यतया इन नाटकों में प्रतीक का संबंध कथ्य या नाटकीय संवेदना के प्रभावशाली संप्रेषण से है। वस्तुत: रचनाकार केन्द्रीय प्रतीक का चयन शीर्षक के रूप में करके उसे विभिन्न पात्रों, स्थितियों, घटनाओं तथा वातावरण से संबंधित करके प्रतीकार्थ को उभारने की चेष्टा करता है। इन रचनाओं में प्रेक्षक के चिंतन और संवेदन को श्लिष्ट रूप में प्रभावित करने का प्रयास किया गया है। जिनमें संवादों के जरिये कथा के अनेक स्तर खुलते हैं। "मादाकैक्टस" नई प्रतीक शैली को जन्म देने वाला वह नाटक है जो वैचारिक संघर्ष के जरिये अर्थ के अनेक स्तर खोलता हुआ केन्द्र की सतह तक पहुँचता है। स्त्री-पुरूष के संबंधों को लेकर मादाकैक्टस का प्रतीक जितना आधुनिक है उतना यथार्थपरक भी। रचनाकार ने कैक्टस के माध्यम से एक शाश्वत प्रतीक प्रस्तुत किया है जो वस्तु विन्यास, पात्र, रचनामार्दव, दृष्यबंध तथा संवादों की गहराई में व्याप्त होकर सांकेतिक अर्थ की निरंतर सृष्टि करता है। समकालीन नाट्य रचनाओं में अपने ढंग के इस अनोखे नाटक में वनस्पति शास्त्र की प्रक्रिया के आधार पर स्त्री-पुरूष के संबंधों को लेकर रचनाकार ने एक नई खोज प्रस्तुत की है। "आधे-अधूरे" के सभी पात्र आधुनिक मनुष्य के खंडित व्यक्तित्व के प्रतीक हैं और सभी अधूरे और अतृप्त हैं। सभी पात्र पारिवारिक रिश्तों से असंतुष्ट, कुंठित फिर भी साथ रहने को अभिशप्त हैं। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को तीव्र बनाने के लिए रचनाकार ने रंग-संकेतों और मंच सज्जा में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। कमरे में तीन तरफ से झाँकने वाले तीन दरवाजे तीन पुरूषों के प्रतीक हैं जिनसे होकर

सावित्री भाग जाना चाहती है । अथ टूँटा टी सेट अस्त व्यस्त पड़ी चीजें, फटी किताबें, टूटी कुर्सियाँ चरित्रों के अधूरेपन तथा टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्धों के प्रतीक हैं । घर, दफ्तर, और अपने जीवन की उलझनों के बोझ से दबी साबित्री की दयनीय परिस्थिति की ओर जहाँ मार्मिक संकेत है वहीं नाटकीयता की सजीव छवि भी और यही छवि सम्पूर्ण नाटक को प्रतीकों के दायरे में समेट लेती है जिसे सामान्य दर्शक समझ तो सकता है परन्तु अनुभव नहीं कर सकता । यही कारण है कि नाटक की इस प्रतीकी परम्परा को प्राचीन भारतीय नाटकों से हम जोड़ नहीं पाते और हम यदि जोड़ने का प्रयास करते हैं तो समूचा नाट्य दर्पण और उसमें प्रतिबिम्बित विचारकों की छवि टूटकर अलग हो जाती है ।

यही कारण है कि ज्ञानदेव अग्निहोत्री, डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल, मोहन राकेश, रमेश मेहता, रामेश्वर प्रेम, मुद्रा राक्षस, शँकर शेष, रमेश बक्षी, बृजमोहन शाह, दया प्रकाश सिन्हा, सर्वेश्वर, सुरेन्द्र वर्मा, डॉ० सुरेश चंद्र, आस्तानन्द सदासिंह, गोपाल उपाध्याय, जि॰जे॰ हरिजीत, हमीदुल्ला, शान्ति मेहरोत्रा, जगदीश चन्द्र माथुर जैसे रचनाकारों के नाटक अभिधा की समझ के बाहर हैं ।

ऐसे नाटकों की भाषा अभिधा न होकर, विचित्र अभिधा संकेतों, पेचीदे घुमावदार संवादों की कड़ी से जकड़ी हुई भाषा है जिसका संबंध फैंतासी से है या कभी-कभी विपरीत लक्षणा की गहराई से होता है जिसके लिए हृदय से अधिक बुद्धि पर दबाव डालना आवश्यक बन पड़ता है । कहीं-कहीं छोटे संबादों में भी ऐसी तीखी नोक-झोंक होती जिसका अर्थ सीधे न निकलकर बिल्कुल उल्टा और अटपटा होता है । यही कारण है कि उनकी समूची भाषा प्रतीकों की भाषा होती है और ऐसी भाषा में लिखा जाने वाला नाटक प्रतीक नाटक ही हो सकता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय "प्रतीक नाटक : सामाजिक और राजनैतिक अभिव्यक्ति" होने के नाते परिवार तथा सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियों पर गहराई के साथ विचार किया गया है । जहाँ पर स्वतंत्रता से पूर्व की सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति, सद्भाव, भाई-चारे, त्याग, बलिदान, एकता और देश प्रेम की थी, वहाँ पर आज एक भयंकर छलावा है । ज्यों-ज्यों सत्तालोलुपता की प्रवृत्ति बढ़ती गई त्यों-त्यों सद्भाव, एकता, देश प्रेम और भाई-चारे में दरारें पड़ने लगीं और इसका प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन पर बड़ी गहराई के साथ पड़ा । वहाँ पर राजनीति ने निम्न वर्ग में चेतना, नारी उत्थान, ग्राम विकास, ओट प्रणाली के

महत्व को बढ़ावा दिया , वहीं पर दूसरी ओर जनसाधारण में कुंठा, निराशा, स्वार्थलिप्सा, त्रासदी को विकसित कर राजनीति घिनौने के व्यवसाय के रूप में स्थापित हो गयी ।

प्रथम परिच्छेद के अन्तर्गत प्रतीक नाटक की व्युत्पत्ति, भारतीय एवं पपश्चात्य नाटकों के विकासक्रम में प्रतीक नाटक का स्थान, प्रतीक का धातु और कोषगत अर्थ , प्रतीक और प्रतीकात्मकता, काव्य और नाट्य कृतियों की प्रतीक योजना, नाट्य कृतियों की प्रतीकात्मकता और उनका संबंधे समायोजन आदि पर एक शोधपूर्ण चर्चा के साथ-साथ प्रसंगानुकूल विभिन्न विद्वानों एवं आचार्यों के मत भी प्रस्तुत किए गए हैं ।

द्वितीय परिच्छेद के अन्तर्गत प्रतीक नाटक की पृष्ठभूमि, स्वरूप, परिचय, भारतेन्दु युग से पूर्व तथा बाद की नाट्य कृतियों पर विचार किया गया है । इनमें भारतेन्दु युगीन मौलिक या अनुदित नाटकों की चर्चा शोध के विषय को ध्यान में रखकर की गई है । प्रसाद तथा प्रसादोत्तर कालीन नाटकों पर विचार करने के साथ-साथ प्रतीक नाटकों की सामाजिक , सांस्कृतिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की गई है । इसके अन्तर्गत संस्कृति, समाज और राजनीति से साहित्य कार का प्रेरित होना, वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक परिदृष्य पर भी शोधपूर्ण चर्चा की गई है ।

तृतीय परिच्छेद के अन्तर्गत नाट्य शिल्प तथा रंगमंचीय प्रतीक विधान पर चर्चा की गई है । इसके अन्तर्गत बदलती सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के कारण बदलते नाट्य शिल्प, आमुख, रंगमंच, रंगीय उपकरण, रंग संकेत, रंग दीपन, वर्जित दृष्यों का अभिनय , अभिनय के नये प्रतिमान, नाट्य रूढ़ियों की प्रतीक पद्धति, प्रतीक नाटक और उसके विभिन्न तत्व , कथानक, मंगलाचरण, भरतवाक्यम, अवस्थाएँ , पात्र परिकल्पनाएँ तथा नाटकीय तत्वों में व्याप्त प्रतीक योजना की परिणति पर ठोस परिचय देते हुए गहराई के साथ विचार विमर्श किया गया है तथा इसके साथ-साथ भाषा - शैली, संवाद योजना, देश काल, वातावरण के रूप में व्याप्त वर्तमान राजनीति और नाट्य कृतियों में समाहित समाजशास्त्रीय पक्ष को उजागर करने का प्रयास किया गया है ।

चतुर्थ परिच्छेद के अन्तर्गत प्रतीक नाटक, सामाजिक राजनैतिक अभिव्यक्ति" के मूलभूत कारणों जैसे कि बौद्धिकता, स्वअस्तित्व की भावना, नारी स्वतंत्रता के प्रति नये दृष्टिकोण , स्वछन्द यौन चेतना, नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों में बिखराव , परम्परा के प्रति नये स्वर, सामाजिक जीवन में विद्रूपताओं की नई दिशाओं पर एक शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम परिच्छेद के अन्तर्गत प्रतीक नाटक : सामाजिक अभिव्यक्ति, प्रतीक नाटक पर सामाजिक जीवन का प्रभाव एवं पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियों पर बड़ी गहराई के साथ विचार किया गया है। जिसके अन्तर्गत पाश्चात्य प्रभाव , बौद्धिकता , वैज्ञानिकता राजनीति, अर्थ व्यवस्था, यातायात, वैयक्तिक पक्ष , यौन चेतना, टूटती - नैतिकता, मूल्य संक्रमण आदि पर विचार किया गया है।

षष्ठ परिच्छेद के अन्तर्गत पारिवारिक विघटन से टूटती हुई सामाजिक स्थिति, टूटते संयुक्त परिवार, कुंठित लघु परिवार, नारी स्वातंत्र्य एवं अस्तित्व की भावना, पारिवारिक संबंधों की स्थिति, पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन, संतान तथा अन्य कौटुम्बिक संबंधों की स्थिति स्वच्छन्द यौन चेतना तथा टूटते बनते परिवार , विवाह तथा अन्य संस्कारों के प्रति नये चिंतन , जातीय व्यवस्था से सामाजिक जीवन पर प्रभाव , टूटते सामाजिक रीति-रिवाज पर विशेष चर्चा की गई है।

सप्तम परिच्छेद के अन्तर्गत प्रतीक नाटक : राजनैतिक अभिव्यक्ति , पारिवारिक चेतना से प्रभावित राजनैतिक स्थिति , समकालीन, राजनीति का प्रतीक नाटक पर प्रभाव, चुनाव प्रणाली एवं दलगत नीति,का प्रतीक नाटकों पर प्रभाव , आर्थिक विषमता, औद्योगिककरण, तथा वर्ग चेतना , निर्धनता, मँहगाई आदि के कारण प्रतीक नाटकों पर पड़े हुए प्रभाव को विवेचित करने का प्रयास किया है।

अष्टम परिच्छेद के अन्तर्गत प्रतीक नाटकों का पुनर्मूल्यांकन, प्रतीक नाटकों के भविष्य पर विचार किया गया है। अन्त में उपलब्धियों के साथ-साथ प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का उपसंहार भी प्रस्तुत किया गया है। तथा परिशिष्ट के अन्तर्गत सहायक ग्रन्थों व पत्र-पत्रिकाओं की सूची भी दी गई है।

शोध का यह विषय कितना नवीनतम एवं मौलिक होगा इसकी परख एक सहृदय अध्येता व रंगकर्मी ही जान सकता है। आचार्य अभिनवगुप्त जैसे मनीषी विचारक का यह कथन मेरे इस नये शोध के लिए सर्वथा सुसंगत ही प्रतीत होता है। ----

> चित्रं निरालम्बनमेव मन्ये
> प्रमेय सिद्धौ प्रथमावतारम् ।
> तन्मार्गलाभे सति सेतुबन्धे
> पुर प्रतिष्ठापि न विस्मयाव ।।

जैसे रास्ता और पुल बनाने का प्रारंभिक कार्य अजीबोगरीब, अटपटा और शून्य में लटका हुआ सा प्रतीत होता है। परन्तु मार्ग के बन जाने पर पुल का

नक्शा साफ हो जाता है । ठीक उसी प्रकार नये तत्व के शोध की प्रक्रिया शुरू-शुरू में भले ही अटपटी दिखलाई पड़ती है है परन्तु बाद में उसकी समग्रता के आलोक में हर चीज जुड़ी और सप्रयोजन लगने लगती है ।

अन्त में मैं पूज्य गुरुवर डॉ० प्रताप नारायण झा, वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनके कुशल निर्देशन, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन से इस शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत करने का श्रेय हमें प्राप्त हुआ है । प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ० वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी जैसे रचनाधर्मियों का सहयोग हमें समय-समय पर मिलता रहा इसके लिए मैं इन विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ ।

इसके साथ ही हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० रमणलाल पाठक तथा विभाग के अन्य सभी वरिष्ठ प्राध्यापकों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करती हूँ जिन्होंने हमें इस महत्वपूर्ण विषय पर कार्य करने के लिए अपना समुचित सुझाव एवं आशिर्वाद दिया ।

अस्तु ।

शन्नो देवी ३१-८-१९९२
(श्रीमती शन्नोदेवी)